साहित्यसुधा
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यकारों की रचना स्थली
वर्ष: 2, अंक 36, मई(प्रथम), 2018

'हैं जटायु से अपाहिज हम'

राजेन्द्र वर्मा

चर्चित नवगीतकार श्री कृष्ण भारतीय (के.के.भसीन) गीत, नवगीत, कविता एवं निबन्ध आदि विधाओं में विगत चार दशकों से सृजनरत हैं । उनकी गीत-नवगीत 'धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, मधुमती' आदि अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं । बीच में कुछ समय वे अवश्य सृजनशील नहीं रहे, परन्तु सम्प्रति, 'अनुभूति, हस्ताक्षर' जैसी वेब पत्रिकाओं में उनकी सतत उपस्थिति देखी जा सकती है ।

हाल ही में उनका नवगीत-संग्रह, 'हैं जटायु से अपाहिज हम' शीर्षक से प्रकाशित होकर आया है । इसमें उनके 74 नवगीत संगृहीत हैं जिसमें आम आदमी के जीवन के विविध पहलुओं का मार्मिक चित्रांकन है, विशेषतः आज के पूँजीवादी परिवेश में अन्याय, और शोषण से जूझते हुए उसका विफल संघर्ष जिसने उसे हाशिये से भी धीरे-धीरे खिसका दिया है । सत्ता द्वारा पोषित पूँजी के कुफल से उपजी आम आदमी की अभावग्रस्तता, असहायता और विवशता ने रचनाकार को सर्जना हेतु विवश कर दिया है और उसने उसे गीतों में सफलतापूर्वक अभिव्यक्त भी किया है ।

समीक्ष्य नवगीतों में अभिव्यक्ति की शैली आकर्षक है । बोलचाल और तत्सम शब्दों से सज्जित भाषा पूर्णरूपेण भावानुरूप है और मिथकीय प्रतीकों के सफल प्रयोग से कथ्य ऐसे खुलकर आता है जैसे वह पाठक का भोगा हुआ हो । विभिन्न छन्दों में सुगठित ये गीति-रचनाएँ कलात्मक अभिव्यक्ति की रक्षा करते हुए सामयिक विसंगतियों और विद्रूपताओं की ख़बर लेते हैं और आम आदमी की पीड़ा और उसके संघर्ष-संकल्प को जगर-मगर करती चलती हैं । नवगीत की शक्ति को पहचानकर रचनाकार ने शिल्प और वस्तु में पूर्ण सामंजस्य बिठाकर यथार्थ की भूमि हमारे आस-पास घटित हो रहे अघट को अधिकांशतः प्रतीकों और मिथकों के माध्यम से उद्घाटित किया है, जिसमें रचनाकार की जन-प्रतिबद्धता प्रवहमान है । विसंगतियों के विश्लेषण और गीत में कहीं-कहीं वर्णित समस्या का समाधान भी दृष्टव्य है । मिथ से उपजे प्रतीक युगीन यथार्थबोध को प्रस्तुत

करते हुए संग्रह के सभी नवगीत मार्मिक भाव-भंगिमा दर्शाते हैं और देर तक अपनी अनुगूँज बनाये रखते हैं ।

कृष्ण भारतीय ने अपने नवगीतों, विशेषतः जनवादी गीतों की अभिव्यक्ति हेतु ऐसी पदयोजना निर्मित की है जो उसे धार और अतिरिक्त मार्मिकता प्रदान करती है । उनकी पदयोजना के कुछ रूप देखिए : 'फुस्स दूध का हुआ उबाल, है नसीब ही चिथड़े-चिथड़े, बिलखते हाथ जोड़ते छाले, घास का असली सूप, कंकर की छप, मदारी राजगद्दी के, कटखने छंद, मजहब के भस्मासुर, पेड़ों की बजती शहनाई, सिर ताने फूस की झोपडी, धूप के शाल, फुनगी पे रामधुन की धूनी, गश खाती धरा, भूख की अरदास, मरखने-से बैल वाले दिन, सफेदीलाल के काले मुख; या फिर, हैं जटायु से अपाहिज हम । इन बिम्बों-प्रतीकों से न केवल आमजन की व्यथा, घुटन और विवशता की व्यंग्यधर्मी चित्रावली दिखाई देती है, बल्कि चित्त में आस जगाने और उल्लास उठाने वाले ऐसे चित्र प्रगट होते हैं जिनके चरित्र साधन-हीनता के वावजूद संघर्ष करना नहीं छोड़ते और जिजीविषा के सम्मान में जीवन-संगीत सुनाते है, वह भी अपने पूरे स्वाभिमान के साथ ।

कृति का शीर्षक गीत, हैं जटायु से अपाहिज हम' जिसमें वर्तमान सत्ता-व्यवस्था से संघर्षरत आम आदमी की बहुस्तरीय व्यथाओं का अंकन है । उसकी हालत उस जटायु जैसी है जो सीता की रक्षा में शक्तिशाली रावण से टकराने का हौसला रखता है और उससे लड़ने में अपने पंख कटवाकर अपाहिज ज़िन्दगी जीने को मजबूर है । मिथ भले ही जटायु को राम के हाथों स्वर्गारोहण उपलब्ध कराता हो, लेकिन आज के अपाहिज जटायु को कोई राम नसीब नहीं है । गीतकार ने जटायु के प्रतीक के माध्यम से आम आदमी के संघर्ष और रावण जैसी अनैतिक सत्ता-व्यवस्था के समक्ष उसकी विवशता को अंकित किया है । यह सता-व्यवस्था आम आदमी को जीने नहीं दे रही और नित हो रहे सीताहरण में वह अपाहिज जटायु की भूमिका में ही रह जाता है । यहाँ सीताहरण भी किसी घटना विशेष का उल्लेख-भर नहीं है, बल्कि मानवीय मूल्यों, संवेदना और नैतिकता के निरन्तर हो रहे ह्रास का प्रतीक है । गीत देखें :

दम घुटा जाता हमारा धुँए के वातावरण में, क्या करें ?/ है नहीं सामर्थ्य इतनी कि खरीदें / सूर्य से थोडा उजाला/ गगनचुम्बी कीमतों के देश में / है बहुत मुश्किल जुटाना एक रोटी का निवाला / हैं जटायु-से अपाहिज हम / हरेक सीताहरण में, क्या करें ? / एक ध्रुवतारा हमारी ज़िन्दगी, / पर बिक रही है

भाव रद्दी के / रोज बन्दर-सा नचाते हैं / हमें उफ़! / ये मदारी राजगद्दी के / ढेर सारे प्रश्न अगवानी किया करते /नये नित जागरण में, क्या करें ?

संग्रह में राजनीति और नेताओं पर एक-से-एक बढ़कर गीत हैं । उनमें कहीं आज के राजनैतिक यथार्थ को सहजता से गीत में ढाल दिया गया है, तो कहीं सत्ता के ठेकेदारों पर उनकी चुनावी चालबाजियों पर करारा व्यंग्य करते हुए उस तमाशे का बड़े ही कलात्मक चित्र खींचा गया है कि कैसे तमाशबीन जनता छली जाती है ! 'और तमाशा ख़त्म हुआ' गीत का मुखड़ा और दो बन्द देखें :

गरम तवे पर पानी कड़का और तमाशा ख़त्म हुआ / ज़ोर-शोर से राजा गरजा और तमाशा ख़त्म हुआ ।

सौ सपनों की झड़ी लगा दी, जितने चाहो लूटो रे / देख, बन्द का बोर्ड लग गया, ख़त्म तमाशा फूटो रे /

नज़रें आसमान से चिपकीं, रिमझिम पानी बरसेगा / काला बादल चीखा, तड़का और तमाशा ख़त्म हुआ ।

देख, दौड़ता-फिरता राजा चढ़कर उड़नखटोले से / तुझको क्या जादू दिखलाये रोज़ नया इस झोले से /

तूने इसको तौला-परखा राजतिलक अभिषेक किया / देख, रोज़ अब रगड़ा-भंगड़ा और तमाशा ख़त्म हुआ ।

रचनाकार केवल राजनैतिक विद्रूप के चित्र खेंचने तक ही सीमित नहीं है, वह सत्ताधारकों से आँख मिलाकर बात करना भी जानता है । 'और तपा ले धूप' गीत में जहाँ उसका यह रूप प्रखरता से प्रगट हुआ है, वहीं उसका रचना-कौशल द्रष्टव्य है । गीत में वह प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से व्यंग्यधर्मी पंक्तियों से सत्ता से संवाद स्थापित करता है :

और तपा ले धूप, रहम मत करना । / लू से भरी चला तू गर्म हवा / धरती कर दे तपता हुआ तवा /रोटी-सा तू सेंक हमें, क्या करना ! / इतना तड़पा, जमकर बहे पसीना / निभा दुश्मनी, मुश्किल कर दे जीना /हम-सी भेड़-बकरियों से क्या डरना ?

xx

प्रकृति के बिम्ब-चित्र और उसका सान्निध्य सर्जकों को लुभाता रहा है । नवगीतकार ने भी अनेक गीतों में निष्काम और निर्विकार जीवन-राग प्रकृति के माध्यम से गा दिया है । 'ये झूमते परिन्दे' शीर्षक वाले गीत के माध्यम से आशियाने की तलाश को लेकर गीतकार की जीवन-दृष्टि देखें–

ऊँची उड़ान भरकर, नभ चूमते परिन्दे / कुछ तो बता रहे हैं, ये झूमते परिन्दे । / पहली किरण के माथे को चूम पन्थगामी / ये दूर उड़ चले हैं सूरज को दे सलामी । / ये निर्विकार गाथा के निश्छली पहरुए । / यायावरों से हर पल, ये घूमते परिन्दे । / संतों सा थक गये तो. पाया जो खा रहे हैं / फुनगी पे रामधुन की धूनी रमा रहे हैं ।/ जो मिल गया वो अपना, जो न मिला वो सपना / थक करके साँझ ढलते घर ढूँढ़ते परिन्दे ।।

आजकल यह धारणा बन चुकी है कि नवगीत में शृंगार का आना उसे 'नवगीत' से खारिज करने जैसा है, लेकिन यह औचित्यपूर्ण नहीं । वास्तव में नवगीत मनुष्य के सामयिक सन्दर्भों में जीवन-संघर्ष का पक्षधर है, पर यह संघर्ष दम्पति या प्रेमी-प्रेमिका मिलकर भी तो कर सकते हैं अथवा आपसी संबंधों की संघर्षपूर्ण छवि भी प्रस्तुत कर सकते हैं । यदि ऐसा हो तो, शृंगार नवगीत में अछूत कैसे हो सकता है ? हाड़-माँस के बने हम क्या अपने दिलों की बात भी नहीं कर सकते जिसमें संघर्ष की छाया हो ! मानव-हृदय के ऐसे उदगार जिनसे मिलन की वे बाधाएँ प्रगट होती हों जिनके मूल में सामजिक अथवा राजनैतिक सत्ता का अन्याय या शोषण हो, वह अवश्य ही नवगीत का विषय है । हाँ, नवगीत में यदि शृंगार के पारंपरिक रूप, अर्थात दैहिकता को ही स्थान मिला है और कथ्य में सतही प्रेम-भावनाएं प्रगट हुई हों, तो स्थिति भिन्न है । कृष्ण भारतीय के यहाँ जितने भी श्रांगारिक गीत हैं, वे अधिकांशतः जीवन के खुरदरे यथार्थ से संपृक्त हैं । 'जूड़े में तुम्हारे' गीत में शृंगार पक्ष का वर्णन अवश्य है, लेकिन रोजी-रोटी की समस्या सुलझाने में आज की भागमभाग जीवन-शैली के चलते प्रेम-प्रदर्शन का समय किसके पास बचा है ? उल्टे, संयोग की कसक बेचैनी पैदा करती है । इसी से संदर्भित गीत में नायक का वैविश्य कितने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत हुआ है ! देखिए–

अब समय मिल ही नहीं पाता / कि जूड़े में तुम्हारे टांक दूँ / एक मोगरे का फूल । / व्यस्तता ने इस क़दर तोड़ा / अव्यस्थित हो गये सारे इरादे / पेट की ख़ातिर बिके सब / यंत्र को, रंगीन वादे /हूँ अपाहिज वक़्त का मारा / तभी तट झील की हर शाम / तुम पर फेंकती है / मुट्ठियों-भर धूल ।/ एक लम्बे वक़्त

से कितना बुलाया है / पसीने में डुबा, पल-छिन / किन्तु अब तक तो नहीं लौटे / पुराने मोर-पंखी दिन / उम्र चढ़ती जा रही है

सीढ़ियाँ / और कोहरे की अँधेरी घाटियों में / डूबते से जा रहे हैं /ये नयन के फूल ।

गीतकार कवि होने की व्यथा-कथा को भी अपने एक गीत में दर्ज़ करता है । गीत की रचना तभी होती है जब गीतकार तपस्वी की भूमिका में उतरता है, वैयक्तिकता को विस्मृत कर परकाया में प्रवेश कर संसृति के कल्याण हेतु चिंतन-मनन की प्रक्रिया में उतरता है और मनोभावों को रूप और दृष्टि के सामंजस्य से उपजी लयात्मक वाणी देता है । संग्रह का दूसरा गीत, 'कवि होना भी इक दधीच के तप जैसा है' इसका प्रमाण है । गीतकार कहता है :

कवि होना भी इक दधीच के तप जैसा है । / सबका दुख आँखों से गहना, मथना, सहना / शब्द-शब्द गुनना, बुनना / गीतों का कहना /बहुत कठिन तनहा, संतों के तप जैसा है । / मन-सागर-मंथन ने उगले हीरे-मोती / अमृत बाँट, गरल पी जागीं रातें सोती / सूफी दरगाहों के फक्कड़ जप जैसा है ।

xx xx

विसंगतियों और विद्रूपताओं के चित्रांकन और उनकी भर्त्सना में जहाँ गीतकार ने कोई कसर नहीं छोड़ी है, वहीं उसके गीतों में आशा का संचार भी है कि विद्रूप की काली बदली शीघ्र छँटेगी और सुख का सूरज निकलेगा । संग्रह का अन्तिम गीत 'सूरज ने सन्देश दिया है' इसका साक्षी है :

वक़्त आ गया अब, काली बदली को छँटना है / सूरज ने सन्देश दिया है, उसे निकलना है ।

भगदड़-सी मच गयी, मचा है रोना-धोना-सा / खाट खड़ी भ्रस्थाचारों की, क़द है बौना-सा /

अब नक़ली चेहरों पर चढ़ा मुल्लमा हटना है ।

xx xx

कृतिकार को अपने लक्ष्य में अपेक्षित सफलता मिली है, पर उसने शिल्प में थोड़ी छूट ली है, यथा- तुकांत के मामले में उसने अनुस्वार वाले शब्दों को भी तुक के रूप में प्रयुक्त कर लिया है, जैसे- नाका/झाँका, छँटना/हटना, बैठ/ऐंठ आदि । एक गीत के तुकांत हैं- लादे/थापे/हाँपे । वास्तव में 'हाँपे' को 'हाँफे' की तरह ही प्रयुक्त किया गया है । उसे

यदि 'हाँफे' रहने दिया जाता, तो 'ए' स्वर से तुकांत का निर्वाह हो जाता और वाक्य में स्वाभाविक क्रिया-पद भी आ जाता । एक स्थल पर 'स्मृतियाँ' शब्द को सात मात्रिक (SSIS) माना गया है, जबकि उसमें पाँच मात्राएँ (SIS) होती हैं । संग्रह के अनेक गीत वर्णिक छंदों में हैं, लेकिन उनमें दीर्घ वर्णों को लघु के रूप में प्रयोग किया गया है । यह प्रयोग ग़ज़ल में तो चल जाता है, लेकिन गीत में अखरता है । गीत विशुद्ध मात्रिक छंद है । यदि उसमें वर्णिक छंद प्रयुक्त भी हुआ है तो फिर अपवाद को छोड़ते हुए किसी भी दीर्घ वर्ण का स्वरपात नहीं होना चाहिए ।... तथापि, इन छोटी-मोटी बातों से संग्रह का मूल्य कम नहीं हो जाता ।

रचनाकार ने गीतों की भाषा में अपेक्षित लय सुनिश्चित करने के लिए हिंदी-उर्दू के बोलचाल शब्दों को प्राथमिकता दी है; कहीं-कहीं भावानुसार तत्सम शब्दावली का चयन किया है। नवगीतों में लोक का पुट भी दिखलायी देता है जिससे पाठक को अपनापन महसूस होता है । आजकल गद्य की औपचारिक शब्दावली से गीतों की सर्जना अधिक हो रही है, परिणामस्वरूप, उनमें अपेक्षित संवेदना अनुपस्थित है और वे पाठक के मर्म को नहीं छू पातीं । भोथरी संवेदनावाली कविता हम पर घटित नहीं हो सकती, जबकि आज ऐसी रचनाओं की भरमार है- वे चाहे गीतों में हों अथवा मुक्तछन्द कविता में ।... भारतीय जी ने अपने संग्रह के माध्यम से इसकी भरपाई की पुरज़ोर कोशिश की है । हिन्दी के नवगीत संसार द्वारा उनके संग्रह का स्वागत किया जाना चाहिए

- **3/29 विकास नगर, लखनऊ-226 022 (मो.80096 60096)**

-

कृति विवरण :

पुस्तक का नाम - हैं जटायु से अपाहिज हम (नवगीत-संग्रह)
नवगीतकार - श्री कृष्ण भारतीय (मो.96500 10441)
प्रकाशक - अनुभव प्रकाशन, ई-28, लाजपतनगर, साहिबाबाद, गाज़ियाबाद- 201 005
पृष्ठ सं. - 96, मूल्य (सजिल्द) - रु.150/-

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें